भारतीय लोक कलाओं में निहित पर्यावरण संरक्षण का संदेश

डा0 अंजू चौधरी
एसो0 प्रोफे0, ललित कला विभाग,
मेरठ कॉलेज, मेरठ।

Reference to this paper should be made as follows:

डा0 अंजू चौधरी,

भारतीय लोक कलाओं में निहित पर्यावरण संरक्षण का संदेश,

Artistic Narration 2018, Vol. IX, No.2, pp.51-59

http://anubooks.com/?page_id=485

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में 'लोक' शब्द की व्यापकता को वर्णित कर लोक कलाएं, जो की लोक व्याप्त जन सामान्य की समस्त व्यवहारिक और कलात्मक गतिविधियो का संपूजन है, जो परम्परानुमोदित तथा संस्कार निष्ट है, और बहुत व्यापक है, का वर्णन किया गया है। ये कलाएं मानव के जीवन के प्रत्येक पक्ष को बहुत ही सुन्दर, सरल व व्यवहारिक ढंग से प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ मौलिंकता में उसकी लोक कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन काल से ही मानव अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक उपादानों पर निर्भर रहा है लोक कलाओं में यद्यपि स्थानीय एवं जातिगत भिन्नताएं, विशेषताऐं लक्षित होती है, तथापि सभी में पर्यावरण संरक्षण का संदेश निहित है, इसीलिए उनमें प्राकृतिक उपादानों का चित्रण होने के साथ–साथ उन्हें धार्मिक दृष्टिकोण से भी पोषित किया गया है। जिससे इन प्राकृतिक उपादानों के धर्म से जुड़ने पर लोक मानस इनके संरक्षण हेतु पूर्णतः बाध्य हो जाता है। लोक मानव ने यघपि पर्यावरण एवं प्रकृति पर ग्रन्थ नहीं पढ़े, चर्चा और बहस भी नहीं की, तथापि उन्होंने प्राकृतिक उपादानों के महत्व को भली भांति जाना, उनको धरोहर के रूप में संरक्षित किया और आने वाली पीढ़ी के समृद्ध जीवन हेतु इन प्राकृतिक उपादानों को अतिआवश्यक माना। वृक्षों का सर्वाधिक महत्व समझा और इन्हे जीवन्त रखने के लिए चित्रों द्वारा एक गुढ़ सन्देश प्रचारित और प्रसारित किया। इस प्रकार प्रकृति की सर्वत्र व्याप्त महत्ता को सामान्य लोगों तक पहुँचाने व समझाने में लोक कलाएं सबसे सरल व सहज माध्यम सिद्ध हुई है।

मुख्य शब्द *– लोक कलाएं, प्रकृति, पर्यावरण, धार्मिक, अनष्ठान, संस्कार, परंपरा, आध्यात्मिकता, संरक्षण, उत्सव, समारोह, वृक्षोपासना, प्रतिनिधित्व, निर्दिष्ट, कलाकृतियों, अनिवार्यिता।*

डा0 अंजू चौधरी

लोक अर्थात समस्त भुवन, जगत या संसार का अस्तित्व प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। आज हम विज्ञान की जिस विकसित, आधुनिक अवस्था में है वहॉ भी यह सर्वमान्य है कि प्राकृतिक उपादान मानव व पशु जगत के अस्तित्व के लिए नितान्त आवश्यक है साथ ही प्रकृति, मानव व पशु जगत का एक संतुलन ही जैविक परिस्थितियों का सृजन करता है अर्थात सभी का संतुलित, सामन्जस्यपूर्ण विहार ही इस धरा को सुन्दरतम् बनाता है इसीलिए अर्थवेद में पृथ्वी पर प्राप्त सभी वस्तुओं के लिए ही 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैमिनी उपनिषद में कहा गया है कि 'यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। यह प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। प्रयत्न करने के बाद भी कौन इसे पूरी तरह जान सकता है।–''बहु व्याहितो वा अंप बहुतो लोकः के एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्।।[1] जब लोक शब्द इतना व्यापक है तब लोक कला से हमारा तात्पर्य लोक व्याप्त जन सामान्य की समस्त व्यवहारिक और कलात्मक गतिविधियों से है, जो परम्परानुमोदित तथा संस्कारनिष्ठ है। वस्तुतः लोक कलाओ का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है क्योंकि वे मानव के जीवन के प्रत्येक पक्ष को बहुत ही सुन्दर, सरल व व्यवहारिक ढंग से प्रस्तुत करती है। इस प्रकार इनका सादृश्य हम किसान के हल से करें तो ये लोक कलाएं मात्र किसान के हल की आकृति न होकर उपचार और अनुष्ठान है जो किसान हल से भूमि जोतने के समय करता है।[2] लोक–कला प्राचीन युग की देन है जिसमें हमारी सम्यता की पूर्ण झलक छिपी हुई है। लोक कलाकृतियों में मानव का सुख–दुख तथा जीवन की विभिन्न क्रियाए दिखाई देती है। वास्तव में इन कलाओं का जन्म ही भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वरूप हुआ। उल्लासित तूलिका से एक रेखा बनी, आकार उभरा तथा लोक के मन की भावना लोक कलाकृति बन गयी। लोक कलाकृति का सृजन निरन्तर होने वाला प्रकृति क्रम है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नित्य प्राची से होने वाला सूर्योदय। लोक कलायें भी नैसर्गिक देन है तथा प्राकृतिक उल्लास, उछाह अथवा अन्तःप्रेरणा की प्रतिकृति है।[3] दूसरे लोक कलाएं मानव की मानसिक अनुष्ठानात्मक, धार्मिक, सृजनात्मक, भावनात्मक, पारम्परिक व सौन्दर्यात्मक आवश्यकताओं का परिणाम है। इसीलिए लोक कलाएं सर्वदा से प्रकृति संरक्षण का भी संदेश दे रही है। लोक कला का निर्माण लोकोपयोग के लिए होता रहा है इसलिए लेाक–कला मनुष्य को सहजता, बन्धनमुक्तता तथा अहलाद की ओर खींचती है। लोक कलाओं की सृजना की पृष्ठ भूमि में सदैव निम्न भावना निहित होती है।–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पष्यन्तु, माकष्चित दुःख भाक् भवेत।।

भिन्न–भिन्न स्थानों तथा प्रान्तो से सम्बन्धित लोक कलाऐं वैसे तो विभिन्न स्थानीय गुणों व विशेषताओं को प्रकाशित करती है परन्तु सभी में निहित भाव जनहित के संदेश को प्रसारित करने का तथा साथ ही साथ सभी प्राकृतिक उपादनों के संरक्षण का संदेश भी प्रसारित करने का है जैसे कि चाहे मधुबनी, वरली, फड़ चित्रकला ऐपन अथवा मांडना या सोरा जाति की कला हो सभी में वृक्षो व जीव जन्तुओं व अन्य प्राकृतिक उपादानों का अंकन होना इस बात की पुष्टि करता है।

लोक मानस की कला ''लोक कलाओं'' का स्वरूप सामूहिक हितों, आशाओं तथा भय से सम्बन्धित होता है जिसके फलस्वरूप उसने अनेक देवी देवाताओं की कल्पना कर प्राकृतिक वस्तुओं–नदी, वन, पर्वत, सूर्य चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्रों की उपासना द्वारा इन समस्त का महत्व स्थापित किया है। इन

प्राकृतिक उपादानों के लोक चित्र मानव जीवन व उसके अस्तित्व के लिये इनकी अनिवार्यता को प्रदर्शित करते है। साथ ही लोक कलाएं भारतीय संस्कृति, धर्म व परम्पराओं को सर्वथा से पोषित करती रही है अर्थात भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ मौलिंकता में उसकी लोक कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन काल से ही मानव अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक उपादानों पर निर्भर रहा है लोक कलाओं में यद्यपि स्थानीय एवं जातिगत भिन्नताएं, विशेषताऐं लक्षित होती है, तथापि सभी में पर्यावरण संरक्षण का संदेश निहित है, इसीलिए उनमें प्राकृतिक उपादानों का चित्रण होने के साथ–साथ उन्हें धार्मिक दृष्टिकोण से भी पोषित किया गया है। जिससे इन प्राकृतिक उपादानों के धर्म से जुड़ने पर लोक मानस इनके संरक्षण हेतु पूर्णतः बाध्य हो जाता है। समस्त लोक व जनजातिय कलाओं में प्राकृतिक उपादनों यथा वृक्ष सूर्य, चन्द्र, जीव जन्तुओं को मांगलिक अवसरों पर अंकित कर पूजने की परम्परा प्रकृति संरक्षण करने का ही एक प्रभावशाली तरीका रहा है। क्योंकि मानव भावुक व एक सामजिक प्राणी है। समाज में प्रचलित रीति रिवाज व क्रियाकलापों में लिप्त रहे बगैर वह स्वंय को अधूरा पाता है, अतएव समस्त समाज को एकता के सूत्र में पिरोते हुए और भावनाओं को उद्वेलित करते हुए लोक कलाएं प्रकृति को संरक्षित करने के लिए हर मांगलिक पर्व पर उसे पूजने की परम्परा को पोषित कर प्रकृति संरक्षण में अपना अनूठा योगदान दे रही है।

प्रकृति में मानव जीवन के लिए उपयोगी व व हानिकारक सभी का अंकन लोक चित्रों में हुआ है। हानिकारक वस्तुओं के अतिरिक्त लोक मानव ने भविष्य में भी लाभान्वित होने की कामना से लाभप्रद वस्तुओं की उपासना भी आरम्भ कर दी। डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव के विचार में ''लोकपूजाओं का प्रारम्भ दो कारणों की वजह से हुआ। पहला कारण संरक्षण, दूसरा कारण भय होना। जहाँ वृक्षों की पूजा के पीछे संरक्षणवादी प्रवृत्ति समझ आती है, वहीं नाग आदि की पूजा भावना के पीछे भय की प्रवृत्ति दिखाई देती है। वृक्षों के औषधीय एवं पर्यावरण सुधारवादी गुणों के कारण हमारे मुनीषियों ने वर्षों में क्रमशः पीढ़ी दर पीढ़ी चले निरीक्षण–परीक्षण के बाद उन्हें पूज्य बना दिया पूज्येतर भाव पूजा करने वाले के मन में स्थायी रूप से बना रहे। इसके लिये पीपल, बरगद, आँवला, तुलसी आदि वृक्षों की गाथाएँ, व्रत, अनुष्ठान आदि भी जुड़ गई।''[4] हमारे देश की परम्परागत कला की तरह लोक–कला को भी धार्मिक हेतुओं से प्रेरणा एवं रूपाकार प्राप्त होते हैं। लोक जगत के विभिन्न देवी–देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक मान्यता है कि पवित्र कुन्जों में पूर्वजों की आत्मा निवास करती है। अतः ''धर्म प्रवण भारतीय कलाकार ने तत्कालीन लोक जीवन की महती मान्यताओं को अपनी कलाकृतियों में ढ़ाल कर कला के आदर्श को और भी महान बना दिया।''

डा0 अंजू चौधरी

वृक्ष पूजा संसार के बहुत से भागों में अत्यन्त प्राचीन काल से आदिम विश्वासों के साथ प्रचलित रही है। वृक्ष देवता हर प्रकार की कामना पूरी करने की क्षमता रखते हैं। सिन्धुघाटी सभ्यता का वृक्षोपासना का मूल वेदों में निर्दिष्ट करते हुए शंकरानंद ने अर्थवेद से प्राप्त वृक्ष की स्तुति का जो अंश उल्लेखित किया, उसी से प्रमाणित होता है कि वृक्ष पूजा का मौलिक संबंध वैदिक देवताओं से न होकर राक्षस, यातुध ाान और यक्षों से था। वन देवता के रूप में समस्त जंगल की पूजा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन और आदिम था। उनके शैलचित्रों में बने वन–देवता के चित्रांकन प्राप्त हुए है, जो प्रकृति की सृष्टि पर निर्भर है। वृक्ष को केन्द्र में रख भारतीय लोक–कला परम्परा में उनेक संस्कार, अनुष्ठान, यंत्र , गीत, कथा, तीज–त्यौहार आदि प्रचलित है, संक्षेप में वृक्षों से जुड़े सभी लोक व्यवहार आज भी मानव समाज में व्याप्त है। भारतीय समाज में इस परम्परा को जीवित रखने में लोक कलाओं का विशेष योगदान रहा है। लोक मानव ने यद्यपि पर्यावरण एवं प्रकृति पर ग्रंथ नही पढ़े, चर्चा और बहस भी नही की, तथापि उन्होंने प्राकृतिक उपादानों के महत्व को भली भांति जाना, उनको घरोहर के रूप में संरक्षित किया और आने वाली पीढ़ी के समृद्ध जीवन हेतू इन प्राकृतिक उपादनों को अति आवश्यक माना और वृक्षों का सर्वाधिक महत्व समझा।

'वृक्ष' अद्भुत होते है। वृक्ष की छाया में हमारे जीवन का बड़ा हिस्सा सुरक्षित गुजरता है। इसीलिए हमारे लोकगीतों में वृक्षों की घनी शीतल छाया, पुष्पों के पराग की सुगंध तथा फलों का मधुर आस्वाद समाया हुआ है। लोक कवि ईसुरी नीम 'वृक्ष' की अपने संपूर्ण जीवन तक हरित रहने की कामना करते हुए कहते हैं–

सील एइ नीम की छइयाँ, धामों, व्यापत नैयाँ।
धरती नौं जे छू छू जावे हैं लालौइं डरइयाँ।।
फिर करबू आराम लौट कें, अपने जियरा खइँया।
एसोई हरौ रय ईसुरी, हमरे जियत गुसईयाँ।।

इस छाया को सुरक्षा प्रदान करने में हमारी लोक परम्पराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वृक्षों की अनेकानेक विशेषताओं के फलस्वरूप ही संपूर्ण धरती पर इन्हें अत्यधिक महत्व दिया गया है। लोक जीवन में वृक्ष देवत्व–दिव्यता प्राप्त कर उनके साथ घुल–मिल गए हैं। यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगी कि भारतीय लोक–जीवन की परम्परागत लोकरीतियों–अनुष्ठानों को सहेजते हुए लोक मन ने सदैव वृक्षों को श्रृद्धा भाव से पूजा है, उनकी अर्चना की है प्रकृति के जिन उपादानों का संबंध मनुष्य से होता है, वह सब किसी ने किसी रूप में पूजित रहे हैं। लोक की इस भावना के कारण नीम, आम, बेलपत्र, चन्दन, तुलसी आदि वृक्ष लोकचित्रों में प्रतीक के रूप में चित्रित होते आये हैं।

आदिम व लोक जीवन में पेड़–पौधे, लता, गुल्म, फूल–पत्ते लोक कलाओं का विषय ही नहीं बनें, वरन् अलंकरण के समस्त अभिप्राय इन्हीं पेड़–पौधों के अंगों से लिये जाते रहे है। डा0 अर्चना धनंजय का मानना है कि ''मांडणों में वनस्पति जगत की आनुष्ठानिक उपस्थिति होती है। विभिन्न आकार–प्रकार की पत्तियाँ मांडणों के अलंकरण के लिए बनाई जाती है। आवश्यकतानुसार महिलाएँ पत्तियों के आकार को गोल, लम्बा, पतला, छोटा बना लेती है। इसी तरह फलों को भी मांडणों में स्थान

दिया जाता है। नारियल, नारंगी, मौसमी, सिंघाडे, सेब आम, केले के पत्ते आदि स्थानीय महत्वपूर्ण फलों के आकार मांडणों में अवश्य उकेरे जाते है।'' तुलसी के पौधे की पूजा बारहों महीने 'तुलसी माता' के रूप में की जाती है। कहते हैं कि गृहस्थ महिला यदि मातृ तुलसी को जल चढा देती है तो उसे सभी पूजा व यज्ञों का फल मिल जाता है। तुलसी का पौधा छोटा होने के कारण हर घर में 'तुलसी का बिरवा' आवश्यक रूप से होता है। कार्तिक मास में तुलसी पूजा का विशेष महत्व है। कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन तुलसी विवाह का उत्सव मनाया जाता है। विष्णु भगवान की प्राण–प्रतिष्ठा के उपरान्त समारोह पूर्वक तुलसी पौधे का विवाह कराया जाता है। निमाड़ का लोकपर्व 'खोपड़ी ग्यारस' वास्तव में प्रकृति व वनस्पति की पूजा ही है। इस दिन गन्नों या ज्वार के रोड़ों से निर्मित खोपड़ी (मंडप) में किसान तुलसी–सालिग्राम का विवाह रच कर सोए हुए देवताओं को जगाता है। स्त्रियाँ प्रातः काल ही इस पौधे पर जल चढ़ा कर अक्षत, रोली, पुष्प से इसकी पूजा कर गाती हैं–

तुलसी महारानी नमोंः नमोंः कार्तिक मास में हो तोरी पूजा,
सौं अगहन मास भई पटरानी, तुलसी महारानी नमोः नमोंः।

बैसाख शुक्ल पक्ष तृतीया को किसान लोग अपने लिए नये कृषि वर्ष का प्रारम्भ मानकर खेती का सुदिन लेते हैं। जिसमें तुलसी पौधे की भी पूजा की जाती है[5]। अनेक भित्ति–चित्रों में तुलसी का पौधा क्यारा सहित बनाया जाता है जो घर के आरोग्य एवं आस्था का प्रतीक है। आर्युवैदिक दृष्टि से तुलसी एक औषधीय पौधा है, उसके घर में रहने से विषाणु नष्ट हो जाते हैं और घर पवित्रता से भर उठता है। आँगन में तुलसी प्रतिष्ठित करने के पीछे एक तथ्य यह भी है कि काली तुलसी के पत्रों की गंध से साँप वहाँ नहीं आते।

सोमवार के दिन आने वाली अमावस्या में पीपल पूजन किया जाता है। परिवार की वंश बेल निरन्तर चलती रहे और संतान चिरजीवी हो इस आशा के साथ पीपल पूजन की परम्परा है। महाभारत युद्ध में जब कौरव–पांडवों के वंश नष्ट होने की संभावना दिखने लगी तब सरसैय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने उन्हें संतान के चिरंजीवी होने के लिये सोमवती अमावस्या का व्रत रखने का उपदेश दिया था। पीपल पूजा की परम्परा गाँव और शहरों में अनेक मनौतियों के साथ प्रचलित है। पीपल की लकड़ी का उपयोग लोक जीवन में न करें। पीपल के वृक्ष को लोक हानि न पहुँचाएँ। इसके लिए हमारे लोक जीवन में यह मान्यता है कि पीपल में छत्तीस करोड़ देवताओं का वास होता है और पीपल के बड़े पर ब्रह्म राक्षस या दक्ष का निवास होता है।[6] पीपल वृक्ष में जड़ से पत्ते तक देव ही देव समाहित हैं– मूले ब्रंहा, त्वचा विष्णु शाखायायाम् महेश्वरः। पात् पात् देवानाम् वृक्षराज नमस्तुते।।

पीपल के नीचे प्रायः कोई न कोई देवता स्थापित देखा जाता है। लोक पूजित वृक्षों में पीपल सर्वाधिक पूजित, प्रतिष्ठित तथा इसकी महिमा सर्वोत्तम मानी गयी है। गीता में कृष्ण ने 'अश्रत्थोहम् सर्ववृक्षाणाम्' कहकर स्पष्ट किया है कि मैं वृक्षों में पीपल हूँ। श्री कृष्ण का नाम वासुदेव है। लोकजीवन में पीपल को भी वासुदेव या विष्णु वृक्ष कहा जाता है। विष्णु जीव जगत के प्रतिपालक हैं और पीपल में प्राणवायु (आक्सीजन) के उत्सर्जन की अद्भुत क्षमता है। माना जाता है कि यह दीपक के प्रकाश में भी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कर आक्सीजन उत्सर्जित कर सकता है। इसीलिए पीपल के वृक्ष के नीचे चौक पूरकर दीपक जलाने की प्रथा है। इसकी पत्तियों द्वारा छोड़ी जाने वाली आक्सीजन को प्राण वायु

कहा गया है पीपल वृक्ष को संरक्षित करने के लिए विभिन्न लोक कलाओं जैसे– मधुबनी, वरली व उडीसा के पट चित्रों में इसको सर्वाधिक अंकित किया गया है। पीपल की पूजा अर्चना मुक्तिकारक मानी जाने के कारण लोकमन बड़ी श्रृद्धा से इसकी प्रतिष्ठा स्वीकार करता है और इसे संरक्षित करता है। मालवा में होली के पश्चात दसवीं तिथि को स्त्रियाँ पीपल दसा का व्रत रख दसा माता के डोरे में दस गाँठ लगा कर पीपल की परिक्रमा करते हुए सूत के धागे को उस पर लपेटती है। कुछ लोकगीतों में बड़ एवं पीपल को एक साथ पूजने की भी चर्चा की गयी है– तू तो बड़लो छोड़ो ने पीपल जाए ए छड़ छींकमाता। पीपल लम्बी आयु वाला वृक्ष है। गरूण पुराण के अनुसार प्राण त्यागने के दस दिनों तक मनुष्य की आत्मा पृथ्वी पर भटकती रहती है और पीपल वृक्ष पर रहती है। इस वृक्ष के नीचे अनेक महापुरूषों को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। 'जिस पीपल के वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसे आज बोधिवृक्ष के नाम से प्रसिद्धि और सिद्धि प्राप्त है।''

ज्येष्ठ मास की अमावस्या को समस्त उत्तर प्रदेश तथा बुन्देलखण्ड में बर, बरिया अथवा बरगद की पूजा प्रचलित है। दक्षिण भारत में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी से पूर्णिमा तक यह पूजा की जाती है, जिसे वट सावित्री भी कहते है। सुयोग्य वर एवं उसकी चिरायु के लिये कन्याओं एवं महिलाओं द्वारा यह व्रत रखा जाता है। सत्यवान–सावित्री की कथा बरगद के वृक्ष की अक्षयता, शीतलता और जीवन के प्रति संरक्षण की नैसर्गिक प्रवृत्ति ही है। वट वृक्ष गंभीरता एवं छाया का प्रतीक है। लोकमान्यता है कि इस वृक्ष की जड़ों में ब्रह्मा, टहनियों में विष्णु और ऊपर के भाग में शिव तथा पार्वती का निवास होता है। यह वृक्ष इतना श्रेष्ठ होता है कि शुभ कार्यों हेतु जब गणेश जी को आमंत्रित किया जाता है तो वे भी वट वृक्ष की छाया में उतरना, ठहरना चाहते है– ''गढ़ रे गुजरात से गणपति आया। आई उतरया सेला (ठड़ा) बड़ तल।। क्योंकि इसकी छाया घनी व शीतल होती है। ऐसे ही वट वृक्षो का अंकन मधुवनी चित्रों में बहुतायत से देखने को मिलता है।

लोक मनीषा में बहुत गहरे स्तर तक वृक्षों की प्रतिष्ठा व्याप्त है। अक्षय वृक्ष से संबंधित लोक विश्वास है कि प्रलयकाल में पृथ्वी के जलमग्न होने पर समूची पृथ्वी जल में समा जाती है। इस स्थिति में मात्र वट–वृक्ष ही पानी में नहीं डूबता । जैसे–जैसे पानी ऊपर चढता जाता है उसकी शाखायें उर्ध्वगामी होती जाती है। जगत नियन्ता शिशु रूप धारण कर उस पर शयन करता है इसलिये शास्त्रों में इसकी वन्दना की गयी है– ''वट पत्र शायी––बालमुकुन्दम् शिरसा नमामि।'' बरगद, पीपल आदि वृक्षों के नीचे निर्मित मंदिर तथा कुआँ–तालाब स्पष्ट करते हैं कि ग्राम्य जीवन की संपूर्ण आवश्यकताओं के साथ शुद्ध वातावरण तथा आध्यात्मिकता वृक्षों की छाँव में ही होती है। इसीलिए समस्त लोक कलाओं में वृक्षों का अंकन किया गया है व उन्हें संरक्षण प्रदान करने की भावना को लोक मानस में प्रोत्साहित किया गया

है। लोक विश्वास है कि आँवले के वृक्ष की श्रृद्धा–भक्ति से पूजा करने पर अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। कहते हैं कि भगवान विष्णु के मुख से आँवले की उत्पत्ति हुयी–'बोरभाजी आँवला, उठो देव सांवला' लोक में आँवला वृक्ष की उत्पत्ति तप में लीन ब्रहा के मुख से गिरे बिन्दु से हुई, ऐसा विश्वास प्रचलित है। आँवले के वृक्ष में महालक्ष्मी का वास माना गया है। वृक्ष पूजा के रूप में एक अनुष्ठान 'बगीचे का विवाह' होता है। इसमें आम के वृक्षों को वर तथा सरई खंभे को कन्या स्वरूप माना जाता है। बुन्देलखण्ड की सौर जनजाति में 'आम–विवाह' परम्परा में सौरों के विवाह के सामान व्यय–साध्य होता है, जिसमें पूरे समाज को भोज दिया जाता है। हमारे यहाँ प्रचलित एक प्रथा के अनुसार शादी में प्रतीक रूप में आम का वृक्ष बनाकर दुल्हा–दुल्हन से उनकी पूजा कराई जाती है। लोक में आम पवित्रता, भक्ति–समर्पण का प्रतीक होता है। उसके पत्तों की मांगलिकता भी अर्थपूर्ण होती है। प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर आम्र वल्लरों का 'वन्दनवार' बाँधा जाता है। विवाह के शुभ और मंगल हेतु आँगन में आम के हरे पत्तो से मण्डप बनाया जाता है। जिस घर के आँगन में यह 'हरा मड़वा' नहीं बना वह सूना तथा अपशकुनी माना जाता है। आम के पत्ते कलश में मंगल कामना से ही रखे जाते हैं। लोक विश्वास है कि आम के पेड़ पर ग्राम देवी रहती है जो सबका कल्याण करती हैं। आम के फल में सन्तानोपत्ति की क्षमता होने के कारण वह निःसंतान को संतान भी दे सकता है। वरली चित्रों में केले, आंवले व तुलसी के सादृश्य वृक्षों का अंकन पर्याप्त देखने को मिलता है।

अनुष्ठान एवं संस्कारों में वृक्ष पूजित रहे हैं इसीलिए विवाह संस्कारों में ऊमर और बाँस की हरी डालियाँ मण्डप के नीचे गाड़ी जाती हैं। उनका पारम्परिक पूजन किया जाता है। ऊमर का वृक्ष दाम्पत्य जीवन में हरियाली और दीर्घ जीवन का प्रतीक है। बांस का वृक्ष वंशवृद्धि का सांकेतिक सूत्र भी देता है। बांस व केले का विकास अत्यन्त द्रुतगति से होता है इसलिए लोकचित्रों में इन्हें महत्व एवं स्थान प्राप्त है। 'बाँस है तो साँस है' कहावत इस महत्व को प्रतिपादित करती है। बाँस हमारी संस्कृति का जीवन घटक है। घर के दरवाजों पर बाँस की टहनियाँ लगाने की परम्परा प्राचीन समय से रही है। इसकी माँगलिकता के कारण ही मृतक को भी बाँस की अर्थी पर शमशान ले जाया जाता है। केले के पत्तों पर देवताओं को प्रतिष्ठित कर पूजन करना वांछित फल देता है। बैंगा जनजाति के गोदना अभिप्रायों में केले के पत्ते दर्शाए जाते हैं। असम के बोगांइगांव जिले के सोलमारी इलाके में कुवांरी लडकियों की पहली शादी केले के पेड से की जाती है इस शादी को 'तोलिनी ब्याहा' कहते है[7] यह पर्यावरण की मानव जीवन के लिए अनिवार्यता का ही प्रतीक है। जिससे सम्बन्धित लोक संस्कार किये जाते हैं। कुलदेवी के समान ही हिन्दु घरों में कुलदेवता भैरव (शिव रौद्र रूप) की पूजा 'भैरव पूर्णिमा' को की जाती है। खेजड़ी के वृक्ष में भैरव का वास माना जाता है। नदी या तालाब के टीलों पर उगे खेजड़ी वृक्ष के नीचे वहीं से पाँच पत्थर चुनकर उनपर बेल सिंदूर चढ़ाकर उन्हें भैरव रूप में पूजते हैं। इस पूजा के फलस्वरूप परिवार में विध्न बाधायें नहीं आतीं। बेल का वृक्ष तीन पत्तियों वाला होता है जिनमें ब्रहा, विष्णु एवं शिव 'त्रिदेवों'

का वास माना जाता है। कई स्थानों पर बेल वृक्ष के नीचे शिवलिंग स्थापित किए जाते हैं। खेजड़े का वृक्ष अमंगलकारी माने जाने के कारण विवाह जैसे मंगल कार्यों में वर्जित है। परम्परा के एक अंग के रूप में खेजड़ी का गला काटने की प्रथा कई जातियों में प्रचिलत है भादो बद्री तीज को महिलाएँ 'कजली या सत्तू तीज' मनाती हैं। इस दिन सुहाग का व्रत रखक महिलाएँ नीम की डाली को गीली मिट्टी में खोंसकर चारों ओर मिट्टी का पाल बाँधकर उसमें दूध भरती है। नीम पर वस्त्र चढ़ाकर हल्दी, कंकू, चावल और पुष्पों से उसका पूजन कर दूध में नीम की परछाई देखती हैं।

नीम के वृक्ष में हनुमान जी का वास माना जाता है। यह भारतीय मूल का वृक्ष है तथा यहीं से पूरी दुनिया में फैला है। नीम के गोंद को रंगों में मिला देने से वे पक्के हो जाते हैं। अतः 'नाग जिरौती' तथा अन्य भित्ति चित्र बनाने के लिये नीम का गोंद अत्यधिक उपयोगी होता है। साल वृक्ष भी जनजातीय समुदाय का एक पवित्र तथा पूज्य वृक्ष है। उराँव जनजाति में साल वृक्ष के फूलने पर 'सरहुल' त्यौहार मनाया जाता है। बसन्त ऋतु के आगमन पर 'सरहुल' के समान ही विभिन्न जनजातियों में बा, बाहा तथा खद्दी नामक बसन्त पर्व आयोजित किए जाते हैं। इस अवसर पर साल वृक्ष के फूलों से पूजा–अर्चना की जाती है। यह पर्व सूर्य और धरती के विवाह का पर्व माना जाता है। लोक विश्वास है कि इस पर्व के पश्चात् ही धारित्री रजस्वला होकर अन्न उपजाने के लिए गर्भ धारण करती है। चौथे दिन साल पुष्प आदि के विसर्जन के साथ इस पर्व का संपूर्ण अनुष्ठान सृष्टि–चक्र की पुनरावृत्ति की संभावना पर आधारित है। साल वृक्ष को स्थानीय भाषा में सरई या सलगी कहा जाता है। यह वृक्ष आनन्द और समष्द्धी का प्रतीक है। साल वृक्ष दीर्घायु होने के कारण अमरत्व का प्रतीक भी माना जाता है। लोक में प्रचलित कहावत इस विषय की परिचायक है– 'हजार साल खडा, हजार साल पड़ा और हजार साल सड़ा।' अश्विनी मास पितृ पक्ष के उपरान्त माँ दुर्गा के भक्त जनों द्वारा अनुष्ठानिक व्रत साँझी में भी वृक्ष का अंकन किया जाता है। ''नौं दिनों तक अंकित की जाने वाली आकृतियों में दसवें दिन साँझी को जल में विसर्जित किया जाता है। गोबर के नाना प्रकार के कलात्मक अंकनों को रंग–बिरंगे फूलों पौधों, पत्तों का विविध रंगीय वातावरण ही नहीं मिलता वरन् इसमें गृहस्थ के भावी जीवन का रंग वितान भी दिखाई देता है। साँझी कुमारियों तथा बच्चों को पर्यावरण सुषमा की अनुरंजना भी पढ़ाती है। पुत्र जन्म पर भेजे जाने वाले पगल्या में भी वष्क्षों का अंकन किया जाता है। भादो शुक्ल एकादशी को उड़ीसा तथा बंगाल के कुछ क्षेत्रों में कृषकों द्वारा कदम्ब का त्यौहार मनाया जाता है जिसमें कदम्ब के चारों ओर नाचते–गाते हैं तथा उसकी पूजा की जाती है। लोक मान्यता के अनुरूप इससे धन–धान्य एवं संतति की प्राप्ति होती है। मांगलिक अवसरों पर लीपी–पोती–सौंधी धरती पर मांडे जाने वाले मांडनों में सारा पर्यावरण प्रकट होता है–पेड़–पौधे, चीड़े–चीड़ी तथा हमारा प्राकृतिक परिवेश। ऐसे ही अंकन शरीर पर गुदनों के रूप में देखने को मिलते हैं। फड़ कला हो चाहे कावड़ कला, पाठों की कला हो चाहे चितेरा कला सबके विन्यास में पर्यावरण का संरक्षण अवष्य दिखाई देता है।

आज आधुनिकता की होड़ में मानव प्रकृति से विमुख हो रहा है जिस कारण उसका जीवन आरोग्यता से छिन्न हो गया है, रोग युक्त व जटिल हो गया है। सहजता, सरलता, शुचिता का नितान्त अभाव हो गया है। जबकि सत्यता यही है कि प्रकृति के साथ समन्वय से ही मानव का कल्याण हो सकता है इसी भावना को पोषित करने के लिए सभी लोक कलाओं–मधुवनी, वरली, सोरा, मांडना व पट चित्रों

आदि में वृक्षों, पवर्तो, जल संसाधनों, जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों आदि का अंकन सर्वाधिक हुआ है। ताकि मानव समाज इनको संरक्षित कर अपने जीवन को स्वस्थ व सुन्दर व सुगम बनाकर सहजता व सरलता से जीवन व्यतीत कर सकें। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि वृक्षों से जुडे विभिन्न लोक विश्वास धन–धान्य सम्बन्धी, संतान सम्बन्धी, सौभाग्य सम्बन्धी या किसी मनोभिलाषा पूर्ति से सम्बन्धित हो, सभी सृष्टि, जीवन, उत्पत्ति, विकास, उत्पादन तथा पुनुरूत्पादन व सृजन के सिद्धान्त को व्यक्त करते हैं जो जीवन चक्र की निरन्तरता के सूचक हैं, और जो एक अटूट सत्य को स्थापित करते है कि प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित करके ही मानव कल्याण हो सकता है, इसी भावना का संदेश प्राचीन समय से ही लोक कालाऐं–चित्रों, गीतों व संस्कारों व अनुष्ठानों के माध्यम से प्रेषित कर रही है, प्रकृति की सर्वत्र व्याप्त महत्ता को सामान्य लोगों तक पहुँचाने व समझाने में लोक कलाएं सबसे सरल व सहज माध्यम सिद्ध हुई है।

संदर्भ सूची

1. जैमिनी उपनिषद ब्राहमण 3/28
2. डॉ सत्येन्द्र द्वारा अनुवादित–*ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन*। 1999 पृ0सं0–**5**
3. चतुर्वेदी, युगल किशोर–लोक साहित्यः *महत्व और उपादेयता (लेख) लोक साहित्य,* पृ0सं0–**2**
4. श्रीवास्तव, डॉ0 रामस्वरूप–*बुन्देली लोक साहित्य,* रंजन प्रकाशन, आगरा, पृ0सं0–**15**
5. रानी, डॉ0 अर्चना द्वारा सम्पादित–*भारत की लोक कलाएं*–2015 पृ0सं0–**57**
6. गुप्त, नर्मदा प्रसाद–*बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2003 पृ0सं0–**114**
7. संस्कार व संस्कृति (लेख) अमर उजाला (समाचार पत्र) 20 जुलाई 2018